विपश्यना

साधकों का
मासिक प्रेरणा पत्र

बुद्धवर्ष २५३५ अश्विन पूर्णिमा २५ अक्टूबर १९९१ वर्ष २१ अंक ४

धम्मवाणी

पूजको लभते पूजं वन्दको पटिवन्दनं।
यसो कित्तिञ्च पप्पोति यो मित्तानं न दूभति॥

सामणेर- विनय, मेत्तानिसंस.. ६.

पूजा करनेवाले की पूजा होती है, वन्दना करनेवाले की वन्दना होती है, यश और कीर्ति को प्राप्त होता है, जो कि मित्रों के साथ द्रोह नहीं करता।

आत्म कथन

विपश्यना जीवन में उतरे

धर्म जीवन में उतरे तो ही धर्म है। विपश्यना दैनिक जीवन व्यवहार में उतरनी चाहिए। अन्यथा यंत्रवत हो जाएगी, कर्मकाण्ड बन जाएगी और फलदायी नहीं होगी। जीवन के उतार-चढ़ाव में, बसंत-पतझड़ में विपश्यना साधना के कारण समता बनी रहे; इस पर गुरुदेव खूब जोर देते थे। इसी कारण मेरे मन पर उनके इस उपदेश का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा था।

जब यकायक मेरे सारे व्यवसायों का राष्ट्रीयकरण हो गया और उद्योग भी सरकार के हवाले हो गए, तो चित्त की समता और शांति बनाए रखने में विपश्यना का ही बल मिला। गुरुदेव इसे देखकर बहुत प्रसन्न होते थे।

एक दिन उन्होंने मुझे पूछ लिया, " दैनिक विपश्यना साधना करने के बाद क्या तुम अपने पुण्य का वितरण करते हो और कुछ देर मैत्री-भावना करते हो?"

मैने हां में उत्तर दिया तो उन्होंने पूछा, " विशेष रूप से किसे अपने पुण्य में भागीदार बनाते हो?"

मैने कहा, " अपने बड़ों को और फिर उन सब को जिन्होंने मुझे धरम में पकने में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सहायता दी है। इनमें सरकार के वे मंत्री और अफसर भी हैं, जिन्होंने मेरे व्यवसाय आदि का राष्ट्रीयकरण किया और मुझे धर्म में पकने का सुअवसर दिया। इसके बाद अन्य सभी प्राणियों को।"

गुरुदेव यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। मैंने उन्हें बताया कि राष्ट्रीयकरण हो जाने के कारण मेरे मन में सरकार के प्रति अथवा संबंधित अधिकारियों के प्रति रंच मात्र भी द्वेष नहीं है। इस मंत्रिमंडल में मेरे मित्र भी हैं। उनके द्वारा यह जानकर मैं पूरी तरह आश्वस्त हूं कि सरकार का यह कदम किन्हीं विशेष व्यापारियों के प्रति द्वेष के कारण नहीं उठा, बल्कि सच्चाई यह है कि इससे सारे राष्ट्र की भलाई होगी, ऐसा मान कर उन्होंने यह कदम उठाया है। जब उनके मन में दुर्भावना नहीं है तो मेरे मन में दुर्भावना क्यों जागे?. बल्कि सच्चाई तो यह है कि मेरे मन में तो सद्भावना ही जागती है। मैं सरकार का अत्यंत कृतज्ञ हूं कि उसने मुझे व्यवसाय-उद्योग चलाने की उन सारी जिम्मेदारियों से मुक्त कर दिया, जिनमें कि मैं इतना उलझा रहा करता था। अब तो समय ही समय है, फुरसत ही फुरसत है। अब मैं अपना सारा समय परियत्ति और पटिपत्ति धर्म में लगा रहा हूं जो कि अन्यथा बिल्कुल असम्भव होता।

गुरुदेव ने यह सुनकर साधु! साधु! साधु! कहा और मुझे उत्साहित किया कि मैं इसी प्रकार इन्हें मैत्री देता रहूं। और मैं इसी प्रकार मैत्री देता रहा, दिये जा रहा हूं और देता रहूंगा। मैं इस कारण सचमुच बड़ा प्रसन्न हूं। ●

आत्म कथन

जब आधार ही गलत हो

परम पूज्य गुरुदेव को इस बात का पूर्ण विश्वास था कि भगवान बुद्ध के महापरिनिर्वाण के २५०० वर्ष बाद विपश्यना अपनी जन्मभूमि भारत में फिर जागेगी और सारे विश्व में फैलकर विपुल लोक-कल्याण करेगी। वे बहुधा कहा करते थे कि **" अब विपश्यना का डंका बज गया है। समय आ गया है। यह बर्मा से बाहर जाएगी और खूब फैलेगी। "** उनकी यह प्रबल धर्म-कामना थी कि स्वयं इस धर्मदूत का महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पादन करें। स्वयं भारत जाकर विपश्यना के शिविर लगाएं। उस देश में विपश्यना विद्या को पुनः स्थापित करें, जिससे दुखियारे लोगों को दुःख-विमुक्ति का कल्याणकारी मार्ग मिले।

वह बार बार कहा करते थे, " **बर्मा पर भारत का बहुत बड़ा ऋण है, जिसकी अदायगी का अब समय आ गया है। वहीं से हमें यह अनमोल धर्मरत्न मिला। भारत इसे खो चुका है। आज उसे इसकी बहुत आवश्यकता है। भारत में इस समय ऐसे बहुत लोग जन्मे हैं, जिनके पास अनेक जन्मों की पुण्य पारमिताएं हैं। ऐसे लोग विपश्यना के धर्मरत्न को शीघ्र ही सहर्ष स्वीकार करेंगे।** "

लेकिन उत्कट अभिलाषा होते हुए भी लाचारी थी। वे इस सत्कार्य के लिए भारत नहीं जा सकते थे, क्योंकि उन दिनों किसी बर्मी नागरिक को विदेश-यात्रा के लिए पासपोर्ट मिलना निहायत कठिन था।

ऐसे समय मद्रास के महाबोधि सोसायटी के प्रमुख भिक्षु नंदीश्वरजी का निमंत्रण पत्र आया। उन्होंने पूज्य गुरुजी और उनके चंद साथियों को विपश्यना के शिविर लगाने हेतु भारत आने के लिए आमंत्रित किया। गुरुदेव बड़े प्रसन्न हुए। लगा उनकी चिरसंचित अभिलाषा पूर्ण होने का समय आ गया है। धर्म-सेवा के लिए विदेश जाने की आकांक्षा प्रगट करते हुए उन्होंने पासपोर्ट के लिए सरकार के पास आवेदन पत्र चढ़ाया।

संबंधित मंत्री बहुत बड़े धर्म-संकट में पड़ गया। गुरुजी के प्रति उसके मन में बहुत आदरभाव था। परंतु उसकी लाचारी थी। सरकारी निर्णय के अनुसार पासपोर्ट केवल उन्हीं बर्मी नागरिकों को दिया जा सकता था, जो कि सदा के लिए बर्मा छोड़ कर जाते हों अथवा जीविकोपार्जन के लिए विदेश में नौकरी करने जाते हों। ऐसी अवस्था में गुरुदेव को पासपोर्ट कैसे देता? अतः उसने सरकार के एक बड़े अफसर को गुरुजी के पास भेजा। यह व्यक्ति गुरुजी का शिष्य भी था। उसके जरिए संदेश भेजा कि सरकारी आवश्यकता की पूर्ति करने के लिए गुरुजी अपने किसी विदेशी शिष्य से नौकरी दिये जाने का एक पत्र मँगा लें। इस आधार पर उन्हें तुरंत पासपोर्ट दे दिया जाएगा। यह केवल औपचारिकता पूरी करने के लिए था। वैसे तो सरकार भी जानती है कि वे जीविकोपार्जन के लिए विदेश में नौकरी करने नहीं जा रहे।

सयाजी इस सुझाव को स्वीकार कर लेते तो उनका धर्मचारिका पर जाने का स्वप्न सहज ही पूरा हो जाता। वे भारत को बर्मा का ऋण स्वयं चुकाते और विश्वभर के दुखियारों को स्वयं धर्म का अमृतरस बांट सकते। परंतु प्रश्न शील का था। शील के मामले में वह समझौता नहीं कर सकते थे। वह बार-बार कहा करते थे कि अच्छे से अच्छा उद्देश्य भी बुरे माध्यमों से पूरा करने का गलत प्रयत्न नहीं किया जाना चाहिए। उससे सफलता नहीं मिलती। साध्य जितना उज्ज्वल है, साधन भी उतना ही उज्ज्वल होनी चाहिए। यही शुद्ध धर्म है।

अतः बड़ी कठोरता के साथ उन्होंने इस सुझाव को ठुकरा दिया। नौकरी का झूठा पत्र मँगवा लेना आसान था। परंतु झूठ के आधार पर धर्म कैसे सिखाया जाएगा? अपने चिर अभीप्सित स्वप्नों का विदीर्ण होना उन्हें स्वीकार्य था, पर थोड़ी सी भी झूठ का सहारा लेना नहीं। झूठ झूठ ही है, चाहे जितने अच्छे उद्देश्य के लिए क्यों न हो। ऊ बा खिन झूठ को आधार नहीं बना सकते थे। ●

आत्म कथन

वे सदा साथ रहते हैं

कई वर्षों से गुरुदेव मुझे विपश्यना शिक्षण की ट्रेनिंग दे रहे थे। यद्यपि मुझे इसका रंचमात्र भी भान नहीं था। मैं तो वर्षों तक यही समझता रहा कि मैं महज एक भाषा अनुवादक की तरह उनकी सेवा कर रहा हूं, जिससे कि उनके द्वारा बरमी में दिए गए आदेश भारतीय शिष्य हिंदी में समझ सकें। बहुत वर्षों बाद पता चला कि वे मुझे भावी जिम्मेदारियों के लिए तैय्यार कर रहे हैं।

वह मुझे अपने साथ उत्तरी बर्मा के मांडले और मेम्यो शहरों में शिविर लगाने के लिए ले गए। वहां कोई तपे हुए विपश्यना केन्द्र तो थे नहीं, जहां धर्म की पावन तरंगे मिल सकें। मुझे भारत जाकर स्कूल, धर्मशाला, होटल आदि-आदि कामचलाऊ स्थानों पर ही शिविर लगाने पड़ेंगे, जहां विपश्यना केन्द्रों की धर्म-तरंगे जरा भी नहीं मिलेंगी। मानो इसी की पूर्व ट्रेनिंग देने के लिए साथ ले गए थे। साधना केन्द्र के बाहर विपश्यना शिविर कैसे लगाया जाय, शायद इसका पूर्वाभास कराना चाहते थे।

उत्तरी बर्मा का पहला शिविर मांडले में लगा। इसमें सभी साधक-साधिकाएं हिंदी भाषी भारतीय थे। यकायक गुरुजी ने मुझे आदेश दिया कि सायंकालीन धर्मप्रवचन मैं दूं और हिंदी में दूं। अब लगता है कि वह भी भावी जिम्मेदारियों की तैय्यारियां करवाने के लिए था। वैसे सार्वजनिक प्रवचन देने का यथेष्ट अनुभव था। परन्तु विपश्यना धर्म पर प्रवचन देना और वह भी पूज्य गुरुदेव की उपस्थिति में, यह बड़ा अटपटा लगा और झिझक भी हुई। परंतु गुरुदेव का आदेश था। अतः पूरा किया और झिझक मिटी।

उत्तरी बर्मा की इस धर्मचारिका के कुछ दिनों बाद ही रंगून के विपश्यना केन्द्र में एक शिविर लगा, जिसमें केवल ३ साधक शामिल हुए और तीनों ही हिंदी भाषी भारतीय। जब आनापान देने का समय आया तो सदा की भांति मैं गुरुदेव के साथ चैत्य के केन्द्रीय कक्ष में गया। वहां गुरुदेव ने प्रारंभिक बुद्ध वंदना पूरी की और फिर यकायक मुझे कहा कि अब इन्हें त्रि-रत्न शरण, पंचशील और आनापान तुम दो! इस सर्वथा अप्रत्याशित आदेश से मैं चौंका। उन्होंने मुझे जरा घबराया हुआ देखा तो आश्वासन भरे शब्दों में हिम्मत बँधायी कि तुम मत घबराओ। मैं तो यहीं तुम्हारे पास हूं।